अभिव्यक्ति

दैनिक भास्कर, मंगलवार 21 फरवरी, 2017

मातृ भाषा से ही खुलते हैं अन्य भाषाओं के द्वार

अंतरराष्ट्रीय मातृ भाषा दिवस... बढ़ते वैश्वीकरण के साथ कई भाषाओं को जानने की बढ़ती जरूरत व मातृ भाषा की भूमिका

गिरीश्वर मिश्र
कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
misragirishwar@gmail.com

भाषा मनुष्य की सर्जन शक्ति का ऐसा नायाब तोहफा है जो सिर्फ उसे और उसकी दुनिया को ही नहीं बल्कि जो हो सकता है, यानी संभावना है, उसे भी रचता चलता है। आज विश्व में लगभग सात हजार भाषाएं जीवित हैं और वैश्वीकरण के इस दौर में अपने से भिन्न संस्कृतियों में काम करने के लिए दूसरी भाषा का ज्ञान जरूरी होता जा रहा है। रोजगार की खोज में और युद्ध जैसी विभीषिकाओं के चलते लोग एक देश से दूसरे देश में आवागमन करते हैं। ऐसी दशा में लोगों को अपनी भाषा के साथ दूसरी भाषाओं को भी सीखना पड़ता है। भाषाओं का सह-अस्तित्व आज जैसा है वह अनोखा है। द्विभाषिकता या बहु भाषिकता अब अपवाद नहीं बल्कि सामान्य बात है। भारत में तो द्विभाषिकता सामान्य तथ्य है। सामाजिक निकटता और क्षेत्रीयता के हिसाब से भाषाओं के बीच रिश्ता बनता है। भाषाओं के संसार में रहते हुए हम रचना भी करते हैं और खुद भी रचे और बुने जाते हैं, जिसका सिलसिला बचपन में शुरू होता है।

बच्चे को भाषा एक अनुभव के रूप में जन्म से पहले से ही प्राप्त रहती है। माता-पिता घर में बातचीत करते हुए बच्चे के सामने नया संसार खोलते चलते हैं। उसके मस्तिष्क पर भाषा के इस पहले अनुभव की बड़ी गहरी और अमिट छाप पड़ती है, जो अचेतन स्तर पर भी सक्रिय रहती है। साथ ही बच्चे का भाषा-प्रयोग तथा भाषा-अभ्यास उसके मस्तिष्क को जरूरी पोषक खुराक भी देता है। यही मातृभाषा है। मातृभाषा के लिए प्राण न्यौछावर करने का पहला उदाहरण पूर्वी बंगाल (अब बांग्लादेश) में मिलता है। बांग्ला भाषा के मान की रक्षा के लिए ढाका में 21 फरवरी 1952 को चार लोग शहीद हुए थे। उसके बाद विश्वभर में मातृभाषा प्रेमी खासकर बांग्लाभाषी इस दिवस को भाषा शहीद दिवस के रूप में मनाकर भाषा-शहीदों का स्मरण करते हैं।

मानव जीवन के शुरुआती सात वर्ष भाषा सीखने लिए बेहद महत्वपूर्ण पाए गए हैं। शोध अध्ययनों में बच्चों की आरंभिक शिक्षा के लिए उनकी मातृभाषा को ही सबसे उपयुक्त माध्यम पाया गया है। मातृभाषा में एक बार महारत हासिल हो जाने के साथ बच्चे के पास भाषा के उपयोग का एक सांचा उपलब्ध हो जाता है। तब उसके लिए दूसरी भाषा(एं) सीखना सरल हो जाता है। स्कूल की भाषा मातृभाषा या घर की भाषा न हो तो यह भेद सीखने के काम को कठिन बना देता है। यदि माता-पिता उस भाषा से अपरिचित हों तो सीखना पूरे परिवार पर भार हो जाता है। जैसा कि हिंदी (या अन्य कोई भारतीय) भाषा-भाषी माता-पिता का बच्चा जब अंग्रेजी माध्यम के स्कूल में जाता है तो वे बच्चे की पढ़ाई में मदद नहीं कर पाते। ऐसे बच्चे स्कूल में नहीं टिक पाते और पढ़ाई में उनकी रुचि कम हो जाती है। जो बच्चे टिकते भी हैं उनकी शैक्षिक उपलब्धि और सर्जनात्मकता अपेक्षाकृत सीमित रह जाती है। समाज में सबको समान अवसर देने का वादा भी अधूरा ही रह जाता है। अतः जरूरी है कि मातृभाषा में आरंभिक शिक्षा को अनिवार्य बनाया जाए लेकिन, भारत की वास्तविकता दूसरा ही चित्र दर्शाती है। भारत भाषा के लिहाज से अजीब-सी स्थिति में है, जहां अंग्रेजी का मोह इस कदर उमड़ रहा है कि मातृभाषाएं पिछड़ती जा रही हैं। शिक्षा की गुणवत्ता को आंख मूंदकर अंग्रेजी भाषा, अंग्रेजी सलीके और कायदे-कानून के साथ जोड़ दिया गया है। प्रतिष्ठा, मान-सम्मान और वर्चस्व की दृष्टि से आज अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं के बीच बड़ी खाई पैदा हो गई है। बिना जांचे-परखे हमने उसे ज्ञान की अंतिम वाहिका मान लिया है। आज हिंदी पट्टी का युवा अंग्रेजी के चक्कर में ज्ञान तो दूर अपनी मातृभाषा हिंदी भी भूल रहा है। उसका भाषिक संस्कार दिन-प्रतिदिन कमजोर पड़ता जा रहा है।

हिंदी की उपभाषाओं या बोलियों जैसे ब्रज, अवधी और भोजपुरी आदि को हिंदी के विरुद्ध खड़ा करते हुए लोगों ने भाषा के प्रश्न और भी जटिल बना दिया है। सदियों से हिंदी इन उपभाषाओं से रस ग्रहण करती आ रही है पर आज इन सभी को आमने-सामने खड़ा किया जा रहा है। इसके राजनीतिक लाभ हो सकते हैं। ध्यान से विचार करें तो इनके बीच सहयोग की आवश्यकता है। भारतीय ज्ञान-विज्ञान और लोक-संस्कृति को समर्थ बनाने की दृष्टि से हिंदी को समर्थ बनाने की जरूरत है। देशवासियों के मन में स्वदेशी भाव को जगाने के लिए समाज को उसकी अपनी भाषा मिलनी चाहिए। जीवन के महत्वपूर्ण क्षेत्रों जैसे स्वास्थ्य, न्याय और शिक्षा आदि में हिंदी का प्रयोग अभी भी बड़ा ही सीमित है। मनोरंजन और बाजार के क्षेत्रों में थोड़ी जगह जरूरी बनी है। आवश्यक है कि इसे ज्ञान और विचार की भाषा बनाया जाए। एक बहुभाषा-भाषी देश के रूप में भारत समृद्ध है और भाषाओं के बीच सेतु बनाकर ही हम आगे बढ़ सकते हैं। यह अद्भुत है कि भारत में इस तरह के सेतु के प्रयास की पुरानी परम्परा है। देवनागरी के लिए बिनेश्वर ब्रह्म की शहादत यादगार है। 28 फरवरी, 1948 को असम में कोकराझार के पास भरतमुरी ग्राम में जन्मे ब्रह्म ने 1965 में कोकराझार से हाई स्कूल करके हिंदी विशारद की परीक्षा भी उत्तीर्ण की। 1971 में असम की सभी स्थानीय भाषाओं के संरक्षण तथा संवर्धन के लिए हुए आंदोलन में वे 45 दिन तक डिब्रूगढ़ जेल में भी रहे। वे 1996 और 1999 में बोडो साहित्य-सभा के अध्यक्ष रहे।

असम में बोडो भाषा के लिए लिपि को लेकर कई बार आंदोलन हुआ और ब्रह्म ने रोमन लिपि के स्थान पर देवनागरी लिपि का समर्थन किया और वह स्वीकार कर ली गई लेकिन, राज्य में उग्रवादी गुट 'नेशनल डेमोक्रेटिक फ्रंट ऑफ बोडोलैंड' (एनडीएफबी) के दबाव से बोडो साहित्य सभा में फिर से लिपि का प्रश्न उठाया गया। ब्रह्म ने इस बार भी देवनागरी लिपि का समर्थन किया और एनडीएफबी की धमकियों की उपेक्षा की, जो देवनागरी की बजाय रोमन लिपि की मांग करता रहा है। वे देवनागरी को सभी भारतीय भाषाओं के बीच संबंध बढ़ाने वाला सेतु मानते थे। उनके प्रयास से बोडो पुस्तकें देवनागरी लिपि में छपकर लोकप्रिय होने लगीं। इससे उग्रवादी बौखला गए और 19 अगस्त, 2000 की रात में उनके घर पर गोली मारकर उनकी हत्या कर दी गई। ब्रह्म 'देवनागरी के नवदेवता' कहे गए। ब्रह्म जैसे सेतु हर भारतीय भाषा में मौजूद है। इनका उपयोग हिंदी व अन्य मातृभाषाओं को मजबूत बनाने में किया जाए तो ज्ञान-विज्ञान के नए क्षितिज खुलेंगे इसमें शक नहीं।

(ये लेखक के अपने विचार हैं।)